International Journal of Applied Research 2018; 4(2): 170-172

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(2): 170-172
www.allresearchjournal.com
Received: 21-12-2017
Accepted: 23-01-2018

डॉ. उमेश कुमार
इतिहास विभाग, स्वामी श्रद्धानंद महाविद्यालय, अलीपुर, दिल्ली, भारत

Correspondence
डॉ. उमेश कुमार
इतिहास विभाग, स्वामी श्रद्धानंद महाविद्यालय, अलीपुर, दिल्ली, भारत

भारतीय समाज का आधार : सम्बंध, संवेदना और सेवा

उमेश कुमार

प्रस्तावना

भारतीय समाज सम्बन्धों के ताने -बाने में गुथा हुआ है| सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानव ने प्रकृति के साथ संघर्षों के क्रम में अपने को रागात्मक सम्बन्धो में बाध लिया| यह सम्बन्ध सवेंदना के धरातल पर प्रगाढ़ होते चले गये| मनुष्य के अंदर सेवा की भावना ने समाज का निर्माण कर लिया| हालांकि पशुओं के अंदर भी आपसी सम्बन्ध,संवेदना और सेवा की भावना मिलती है| लेकिन केवल सृष्टि में मनुष्य एक मात्र प्राणी है जो अपनी रागात्मक संवेदनात्मक भाव और विचार को वाणी दे सकता है| भारतीय सामाजिक विकास के क्रम में हमारे मनीषियों ने अपने चिंतन और चेतना के बल पर इसी रागात्मक सवेंदना का विस्तार किया| इसको अपने चिंतन के बल पर मूल्यों और मान्यताओ के धागे से बाँध दिया| काल के प्रवाह में भारतीयता का विस्तार विश्व धरातल तक हो गया तब हमने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को जन्म दिया| यह तभी सम्भव हो सकता था जब हम समाज ,राष्ट्र और विश्व के प्रति संवेदनशील हो|

हमारे भारतवर्ष में सैकड़ो ऋषि, मुनियों ने अपना सर्वस्य जीवन भारतीय समाज के अंदर 'सत्यम शिवम और सुन्दरम' की धारणा या भावना को गढने में लगा दिया| एक बार किसी सभा में आदरणीय सरकार्यवाह भैयाजी जोशी ने कहा था कि 'किसी भी देश के मूलभूत चिंतन के आधार पर बनाई व्यवस्थाएं ही समाज को उन्नति के मार्ग पर ले जाती हैं| लेकिन हम जब अपने मूल चिंतन से भटक जाते हैं तो कई प्रकार की विकृतियों का जन्म होता है|'[1] वर्तमान भारत की स्थिति कुछ इसी प्रकार की है| आज हम पश्चिमी सभ्यता के चकाचौंध में अपने मूलभूत चिंतन को भूलते जा रहे है| जिसका दुष्परिणाम समाज विखंडन के रूप में हमारे सामने है| जब -जब हम अपने मूलभूत चिंतन से भटके है; हमारे महापुरुषों ने पुनः हमारी सांस्कृतिक आध्यात्मिक चिंतन को स्मरण कराया है| इस मूलभूत चिंतन को समाज के सामने रखने का काम पं.दीनदयाल उपाध्याय जी ने किया है| इसे हम 'एकात्म मानवदर्शन' के रूप में जानते हैं| परंतु इस देश का दुर्भाग्य रहा है कि हमने अपने महापुरुषो के चिंतन को

भुला कर पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को अपना लिया| इसका बीज आजादी के बाद से ही भारतीय समाज में अंकुरित होने लगा| इसका सबसे बड़ा कारण है उस समय का हमारा नेतृत्व, जो पश्चिमी विचारों और पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित था| फलस्वरूप हमने अपनी भारतीय संस्कृति और शिक्षा को भुला कर दुनिया के विकास मॉडल को सही मानते हुए जल्दबाजी में उसको स्वीकार कर लिया गया| जबकि हमारी चिंतन परम्परा समाज को न केवल रागात्मक संबंधो में बांधती है बल्कि कर्तव्य के रूप में समाज कल्याण कृत हेतु संवेदनशील भी बनाती है|

भारतीय समाज को विकसित और गतिशील करने में हमारी इतिहास,संस्कृति और परम्परा का गहरा हाथ है| इस बात को हम सभी जानते है की हमारी संस्कृति की आधरभूत संकल्पना ही मानवीयता की सेवा करना है| हमने हमारे दुश्मनों के प्रति भी रागात्मक सबंध रखे है| इतिहास इस बात का साक्षी है की युद्ध क्षेत्र में पराजित और घायल दुश्मन सैनिको को भी निस्वार्थ भाव से सेवा की है| यह व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ने और सम्बन्ध स्थापित करने की भावना भारतीय परिवार के जड़ों में निहित है| हम बचपन से ही अपने परिवार में मनुष्य, पेड़ ,पौधे, जानवर यहाँ तक की सृष्टी के प्रत्येक कण में जीवन है| इसीलिए हम प्रकृति से उतना ही ग्रहण करते थे जितनी में हमारी आवश्यकता की पूर्ति हो जाती थी| लेकिन आज का समाज विज्ञान और तंत्र का गुलाम बन कर प्रकृति के साथ संघर्ष करके जितना प्राप्त कर सकता है उससे कई गुना प्राप्त कर रहा है| दूसरे शब्दों में कहें तो प्रकृति का दोहन कर रहा है| जबकि 'भारत के मनीषियों ने कहा है कि प्रकृति के साथ संघर्ष नहीं मित्रता करो| यदि मित्रता रखनी है तो संयम रखना पड़ेगा|'[2] इसके बारे में आज सारे पर्यावरणविद भी कहते ही हैं कि जो समाप्त होने वाली चीजें हैं, उनका संयमित उपयोग कीजिए| क्योंकि उस पर वर्तमान ही नहीं आने वाली पीढ़ी का भी अधिकार है| इसीलिए हमारे महापुरूषों ने प्रकृति की रक्षा करने का रास्ता बताया है| अपनी सारी परंपराएं उत्सव प्रकृति को ही समर्पित हैं| पर्वों के अर्थों के पीछे की भूमिका को समझते हुए इसे आने वाली पीढ़ी में संस्कारित करना है| ताकि वह भी उसी भाव से उन पर्वों के महत्वों को समझें और अपने आचारण में रखें. जल की पूजा है, वृक्षों की पूजा है, पेड़- पौधों की पूजा है, पशु- पक्षियों की पूजा है.| 'निश्चय ही पशु जगत का मनुष्य के जीवन में महत्व है, इसलिए गाय को एक प्राणी के रूप में हमने कामधेनू कहा. वनस्पति जगत से भी हमारा संबंध है, इसलिए प्रचलित शब्द चलाया कल्पतरू. हमारे उत्सव, परंपराएं और संस्कृति इस प्रकृति के साथ तालमेल बिठाकर चलो, यही संदेश देने वाली रही है|'[3] आज यदि इसमें कुछ विकृति आ गई है तो उस विकृति को दूर करने का काम भी करना पड़ेगा. इसलिए शाश्वत चिंतन को केवल ग्रंथों में सीमित करेंगे तो काम नहीं चलेगा. उसको अपने जीवन व्यवहार में लाना पड़ेगा| यह तभी सम्भव होगा जब हम अपनी प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में परिवार की अवधारणा को मजबूत करें|

भारतीय समाज में बालक संयुक्त परिवार में रहते हुए सृष्टी के प्रति संवेदनशील और मानव सेवा की भावना को खेल-खेल में सीख जाता है| यह ज्ञान अपने माता -पिता और परिवार से ग्रहण करता है| पहले हमारे घरो में रामायण और महाभारत की कहानिया सुनाई जाती थी| यानी बचपन से ही उसके अंदर राम और कृष्ण के आदर्श चरित्र के गुण बोये जाते थे| बालक बड़ा हो कर उसी प्रकार का आदर्श प्रस्तुत करने की कोशिश करता था| लेकिन आजादी के बाद हम पाश्चात्य संस्कृति में ऐसे सरोबर हुए की अपनी संस्कृति को भुला

दिया| हमने सब कुछ को पाश्चात्य दृष्टि से देखना शुरू कर दिया| रही सही कसर पाश्चात्य शिक्षा ने पूरी कर दी| पाश्चात्य शिक्षा के स्कूलों से पढ़ कर जो युवा निकले उनकी दृष्टि में परिवर्तन आ गया| एक तरह से हमने आध्यात्मिक मूल्यों को तिलांजलि दे दी| जहाँ पहले गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त युवा प्रकृति को माता और पिता के समान माँ कर उसकी आराधना करता था| वह प्रकृति से उतना ही ग्रहण करता जितनी उसकी आवश्यकता होती थी| क्योकि प्रकृति के साथ उसका माता और पुत्र का सम्बन्ध था| इसलिए दोनों के बीच जो सम्बन्ध था वो रागात्मक था| मनुष्य अगर प्रकृति से कुछ ग्रहण करता तो बदले में वह प्रकृति की सेवा भी करता| यह सेवा भावना भारतीय समाज का आधार स्तम्भ है| वह प्रकृति में भी ईश्वर को देखता है -

सर्व भूतेषु एनेकम भाम्ब्य यमीक्ष्यते|[4]

अर्थात प्रत्येक जीव में चाहे वो देवता हो, मनुष्य हो, जल हो, जन्तु हो, या पेड़ पौधे इन सब में एक ही आत्मा का निवास है| यह भारतीय समाज का आधार है| लेकिन पाश्चात्य संस्कृति और शिक्षा ने हमे भौतिकवादी बना दिया| एक तरह से भोगवाद की तरफ अग्रसर कर दिया| जिसका परिणाम यह हुआ की भारतीय समाज के जो आधार थे , सम्बन्ध,संवेदना और सेवा धीरे-धीरे लुप्त हो गये| इसका प्रभाव यह हुआ की समाज में वैमनस्य व्याप्त हो गया| समाज संवेदनहीन हो गया| आज हमारे हृदय में किसी गरीब,दुखी और जरूरतमंद इन्सान को देख कर वेदना उत्पन्न नहीं होती है| हमारे अंदर जो इन दुखियो और बेसहारो के प्रति सेवा भावना थी वो समाप्त हो गई है| जबकि हमारे यहाँ पुराणों में महर्षि व्यास ने लिखा है की -

अष्टादशपुराणंनां सारं व्यासेन कीर्तितम|
परोपकारा: पुण्याय पापाय परपीडनम्||

अर्थात **दूसरो का उपकार करने से पुण्य होता है और दुःख देने से पाप । महाकवि तुलसीदास ने भी लिखा है** -परहित सरिस धरम नहि भाई, परपीड़ा सम नहि अधिमाई ।[6]

आज भी भारत विश्व के देशो में सबसे सुंदर है| जहाँ बालक बिना किसी पाठशाला में गये ही समाज के उपयुक्त आधारों को सहज रूप से सीख जाता है| परिवार में माता बालक को दुसरो से सम्बन्ध स्थापित करने और सेवा की भावना को सहज ही सीखा देती है| ऐसा विश्व के किसी भी देश में नहीं होता है| अत: हमे पुन: भारतीय समाज को देवभूमि बनाना है तो भारतीय संस्कृति और मूल्यों को अपनाना होगा| ऐसा करके हम भारत को पुन: विश्व में गौरव के पद पर स्थापित कर सकते है|

सन्दर्भ

1. **डॉ. अशोक मोडक: धर्मपाल साहित्य: सार संक्षेप,पृष्ठ** 158
2. **श्यामचरण दुबे "भारतीय समाज, पृष्ठ, 48**
3. **डॉ. अशोक मोडक: धर्मपाल साहित्य: सार संक्षेप, पृष्ठ** 192
4. **श्री रामशरणशास्त्री त्रिपाठी : वेदान्तसार: (व्याख्या सहित), पृष्ठ** 89
5. **राधा वल्लभ त्रिपाठी :संस्कृत साहित्य : बीसवी सदी,पृष्ठ 58**
6. **रामनारायण व्यास : शिक्षा दर्शन,पृष्ठ 33**